कुल पृष्ठ-14

K. L. Anand
TECHNICAL DIRECTOR

united oil mill machinery
& spares private Ltd.

OFFICE : D-298, DEFENCE COLONY,
NEW DELHI-24 (INDIA)
Telephone : 623809 & 621201
Cable : "CLAPRAN"

ॐ

"पुणः दर्शन"

25-8-08
श्रावन शुक्ल दशमी-२०१५
रविवार

~~[illegible]~~ को, कस्तूरीलाल आनन्द-
१९४४ की बात है - लिख रहा हूं १९५८ में। इस बीचके कुछ संस्मरण जो याद है, उनको लिखता हूं। अबतक जबभी उन १९४४-४५ के दिनों की याद आती है विशेष आनन्दका अनुभव होता है, इसी कारण तो यह लिखता हूं।

स्यालकोट शहर में हर रविवार मन्दिर श्री राम तलाई में भगवान श्री कृष्ण के सामने वाले हालमें कथा-कीर्तन का प्रोग्राम होता था। वहां मैं भी श्री गीता भवनके अन्य प्रेमियोंके साथ जाता था। सत्संगके फल मिलने का दिन ही समझो आ गया। एक ऐसे ही रविवार को (१९५५ के अक्षित नवरात्र हो चुके थे) मन्दिरमें श्री सरदारी लाल जी के साथ जाते हुए मन्दिर में ही एक कमरेमें ठहरे हुए एक महात्मा जी के दर्शन हो गये। जाते जाते साधारण प्रणामकर कीर्तनमें चला गया। उनकी नज़र पड़ जाने, यही बड़ा सौभाग्य है, बस ऐसी ही कृपा दृष्टि उनकी पड़नेसे कीर्तनमें उनका ख्याल आता रहा। कीर्तन के बाद कुछ उपदेश का प्रोग्राम होता था। उसके लिये मैं ही सौभाग्यवश उन महात्मा जी के पास उपदेश देने की प्रार्थना करने को गया। उन्होंने बड़े ही मीठे शब्दोंमें वहां आनेसे इन्कार करदिया। बाकी प्रोग्राम समाप्त कर मैं और भी कई सत्संगी भाईयोंके साथ फिर उनकी सेवामें उपस्थित हुआ — वहां उनके पास एक और महात्मा जो प्रायः कम बोलते थे और अवधूत सी अवस्था में थे — विराजमान थे। पीछे पता चला कि वह श्री रामतीर्थ जी थे — जो ~~मस्तुर निवासी थे~~ — जो उनको मिलनेको चाहसे ही घूम रहे थे)। वहां बात-चीत में उन महात्मा जी ने (जिनको मैं तबसे श्री स्वामी जी कहने लगा — ~~और आगे भी उनके लिये श्री स्वामी जी या श्री जी का ही प्रयोग करूंगा~~) श्रीगीता जी के ११ अध्याय के २४ वें श्लोक का अर्थ समझाते हुए 'दृष्ट्वा दृष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप' को बड़े ही प्रेमसे और विद्वत्ता पूर्ण अर्थ किया, जिसका प्रभाव वहां सभी उपस्थित गीता प्रेमियों पर पड़ा। मैं तो अब समझता हूं कि उनका स्यालकोट में आना शायद मेरे ही लीये हुआ हो। इस बार उनके उसी दिनके तीसरे दर्शन थे, और अब की बार तो उनके पास ही बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैं अर्थ सुनता था, उनको तत्व देखता था।

और उसके साथ साथ खिड़की से बाहर के पीपल वृक्ष को देखता था। उस समय मेरे मन की अवस्था मुझे तबसे अभी तक याद ही नहीं आती - हो सकता है मन की कोई अवस्था है नहीं हो तो यह शांत ही थी; इसलिये कुछ याद नहीं।

श्री स्वामी जी का तखत रूप बड़ा ही आकर्षक था। हल्के गैरवे रंग के उनके वस्त्र थे, पास में ही एक चिप्पी तथा एक बड़ा सा सोटा पड़ा था। साधारण वस्त्रों का बिछा हुआ उनका आसन था, उसपर वह दृढ़ आसन से बैठे थे। उनका विशाल मस्तक, बड़े बड़े कान, शांत भुरव मुद्रा और सब से बढ़कर उनका देखना कैसा यह उनही जैसा है एक कवि ने ठीक ही लिखा है

— न देखने की नज़र में कुछ न दूर रहने का दिल पे काबू —

थोड़ा समय वहां उस शांति का लाभ लेकर सब अपने अपने घरों को चले गये। रवाना रवाने के बाद हम लोग फिर गीता भवन में सत्संग कीर्तन के लीये आते ही थे। वहां जब सब आ गये तो सबने यही राय दी कि उन स्वामीजी को यहां आने की प्रार्थना करें। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उनके दर्शन करने के बाद से तबतक सब उनको ही सोचते रहे हैं। तब उसी समय सब गीता प्रेमियों के साथ मैं फिर उनकी सेवा में हाज़िर हुआ। उनसे गीता भवन आने की प्रार्थना की। श्री स्वामी जी किसी के घर में रहना नहीं चाहते थे। उनको बताया कि वहां सत्संग के लीये २ कमरे - रसोई का मकान कराये पर लिया है, वहां एकांत है, तब उन्होंने चलकर देख आने को मान लीया। सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनका सामान क्या था — एक छोटा सा आसन या बिस्तर जो बगल में आजाता था, एक झोला, एक चिप्पी तथा सोटा। इस तरह से उस रविवार को उनके चौथी बार दर्शन कर हम उनको गीता भवन में ले आये।

रात को रोज़ गीता भवन में सत्संग कीर्तन होता था, वहां उस दिन श्री स्वामी जी से प्रार्थना की कि आप कुछ उपदेश देवें, पर उन्होंने कहा कि आप लोग जो करते हो करें और श्री स्वामी जी छत पर विश्राम के लीये चले गये। इसी तरह आप २-३ दिन वहां रहकर वहां के कार्यक्रम को देखते रहे, हम रोज़ उनसे कुछ कहने को कहते थे, पर आप बड़े प्रेम से ना कर देते थे। सो एक दिन उन्होंने बड़ी कृपा कर हमारी प्रार्थना स्वीकार कर सत्संग में आ गये।

मैं ने प्रार्थना की कि महाराज कुछ उपदेश देवें — तब उन्होंने कहा कि कुछ उपदेश का क्या अर्थ होता है, उपदेश तो जिज्ञासु की जिज्ञासा पर ही होना चाहीये, जैसे औषधी का निर्णय तो रोगी के रोग के अनुसार ही होगा। बात बड़ी ठीक कही उन्होंने। तब मैं ने गीता जी के किसी श्लोक की व्याख्या करने की प्रार्थना की। उसका उत्तर उन्होंने दिया कि आप किस अध्याय का कौन सा श्लोक सुनना चाहते हैं, तब मैं ने कहा कि १५ अध्याय का पांचवा श्लोक। तब उन्होंने कहा कि मैं श्लोक पढ़कर सुनाऊं — मैं ने श्लोक सुनाया, तब आप फिर कहने लगे कि इसका ऐसा भी अर्थ मुझे आता है - मैं कहूं - तब मैं ने उसका अर्थ किया — इस प्रश्नोत्तर में मैं उनके कितना नज़दीक आ रहा हूं, इस बात का अनुभव अब होता है। उस वक्त तो आप जैसा कहते गये मैं करता गया। तब आपने बड़ी कृपा कर इस गुह्य शास्त्र (१५ अध्याय) के १५ श्लोक का बड़े ही विस्तार से अर्थ समझाया। यहां हम रोज़ ही गीता पर कोई न कोई टीका

पड़ते थे, वहां आये कई महात्माओं से गीता जी के अर्थ भी सुनते थे, पर वैसा अनुभवपूर्ण अर्थ हमारे को सुनने का न मिला था। हम सब प्रसन्न थे — इसी बात पर कि इस में हमें रोज कितना अच्छा अच्छा उपदेश सुनने को मिलेगा। सत्संग समाप्त हो सब लोग अपने घरों को चले गये। श्री स्वामी जी के साथ अपने श्री सरदारी लाल जी वहां ही रहते थे।

दूसरे दिन फिर रात को हम सब बड़े चाव तथा उत्साह से सत्संग के लिये इकट्ठे हुए कि देखें आज कैसी अमृत वर्षा होती है। श्री गीता जी के पाठ के बाद फिर स्वामी जी को उपदेश की प्रार्थना की गई। उसका उत्तर जो उन्होंने दिया वह आजतक हृदय में है, और तबसे किसी से कुछ पूछने की विशेष आवश्यकता ही नहीं होती। (हां अब उनसे पूछने में ज्यादा संकोच नहीं, पर आप कृपा कर स्वयं ही इतना बता देते हैं, और उनके इन १४ वर्षके परिचय से कुछ पूछना बाकी नहीं रहा — कभी है तो अपने मरने में ही — उसका तब जैसी पूर्ति होनी है, वह भी आप ही जानते हैं। बच्चा मां की गोद में चला जावे यही उसका सौभाग्य है, फिर और चिंता उसको क्या करनी है — अब भी जब जो चिंता है कभी करता भी हूं वह सब पहले स्वभाव दोषसे ही है — उनके उपदेश — सत्संग के थोड़े विचार से निश्चिंतता प्राप्त होती है — वस्तु)

आपने उस समय जो कुछ फरमाया वह इस प्रकार है "कई आदमियों को उपदेश सुनने का रोग सा होता है। इसी तरह कई महात्माओं को भी उपदेश देने का भी रोग सा ही होता है। मैं उनमें नहीं जो उपदेश देते ही रहते हैं। हां किसी का सत्संग सम्बन्धी कोई अपना प्रश्न हो, वह पूछे, उसमें कुछ कहने की जरूरत हो तो मैं कह सकता हूं। कल आपको एक ही श्लोक से उस अर्थ पद की प्राप्ति का मार्ग बताया था। क्या आप सबने उस पर कुछ विशेष मनन किया — क्या कुछ अनुभव किया — अगर नहीं तो और कहने का क्या लाभ होगा। फिर भी आप सब की इच्छा है तो फिर उसी श्लोक के पहले दो ही गुणों का वर्णन आज फिर किया जाता है — वह हैं — निर्मान मोहः — मान और मोह रहित हो जा। इस पर कल सारा दिन विचार कर जो आप में से आकर कहेगा कि मैं आज सारा दिन अपने व्यवहार काल में मान और मोह से रहित रह सका हूं, उसी को आगे उपदेश होगा — वैसे नहीं होगा"

तब उन्होंने बड़े ही विस्तार से मान और मोह से रहित जीवन पर व्याख्या की। उन्होंने उसे हर एक कैसे अपने जीवन में ला सकता है, वह व्यवहारिक ढंग भी बताए। बड़ी सुन्दर व्याख्या थी (जबसे आजतक मैंने छाती पर हाथ रखकर कहा कि हम मान और मोह से रहित हो गये और नहीं आगे उस वस्तु के उपदेश सुने — वैसे उनकी कृपा से कई कई तरह जीवन को उच्च ज्ञानमय बनाने के साधन उनसे सुनने को प्राप्त होते रहे अब भी हैं) उसके बाद हम में से किसी ने यह दावा नहीं किया कि महाराज मैं मान और मोह से रहित हो गया हूं, मुझे आगे का बताये।

इसी तरह रोज सत्संग होता था। उनकी हर बात-चीत से उपदेश ही मिलता था, जल्दी ही कार्तिक मास आ गया और श्री स्वामी जी ने कार्तिक का सारा महीना ही मौन धारण किया। आप सत्संग में बैठते थे — सत्संग पहले की तरह चलता था, उनके वहां रहने से भी हम सबको विशेष उत्साह रहने लगा।

श्री स्वामी जी का शरीर ज्यादा सुदृढ़ नहीं था, लेकिन चेहरेपर एक विशेष ही चैतन्य था। अपनेको तो पता नहीं कभी बात भी कि श्री स्वामीजी के सिवा कुछ अच्छा ही नहीं लगता था। उस वक्त हम सब किसी विशेष कारणसे उनकी तरफ़ खिंचे जा रहे थे। यह उनकी अपनी कृपा ही थी। हम यहां सब आने वाले महात्माओं का आप सत्कार तो करते ही थे, पर कई एक ऐसी घटनाएं घट चुकी थी जिनसे हम सतर्क से रहते थे. इसीसे कुछ कुछ आलोचनात्मक स्वभाव भी सबका बन ही गया था। पर श्री स्वामी जी के लीये किसी को कभी कुछ कहने का मौका न मिला। सभी उनसे प्रेम आदर करते थे। इस बारेमें मुझे याद आता है कि एक बार दो व्यक्ति मौन ने उनके बारे में कुछ कहा था, पर उसका कुछ बना नहीं, फिर भी मैं आगे उसका उल्लेख करूंगा। मौन में एक बार स्वामी जी के कमर में दर्द हुई थी, तब माता जी ने उनके लीये कमर कस (एक औषधी) की खीर खाने को दी थी। इसी मौन अवस्थामें उनके हाथका एक कागज पर कुछ लिखा हुआ अभी तक मेरे मेरे पास है (~~अब याद नहीं कहां है उसकी प्रतीक्षा में~~)। श्री स्वामी जी के खाने पीने का हम विशेष ध्यान न रख सके, जो घरमें बनता था, वही आप ले लेते थे। आपको लाल मिर्च अच्छी न लगती थी, आप खानेसे मिर्च के बीज चुनकर निकाल दिया करते थे। भोजन आप एकसमय ही करते थे। आपको आम्ल विशेष प्रिय थे। इसी पर याद आता है कि हमारे पूछने पर कि महात्मा आपका नाम क्या है या हम किस नामसे आपको याद रखेंगे तो आपने कहा था कि मुझे "आंवलेवाला महात्मा" इस नामसे याद कर लेना। भोजन वगैरहका विशेष प्रबंध न होने पर भी उनको स्थानीय का जल वायु अनुकूल ही आया, इसी लीये और अब ख्याल आता है कि हम पर विशेष कृपासे आप लगभग ६ मास यहां रह गये। ~~इस वक्त की सब बातें न तो याद रही हैं, फिर भी सोचकर लिखा जावे तो बड़ा विस्तार हो जावेगा।~~

मौन के बाद हमारे सत्संग का और ही रूप हो गया था। श्री गीता पाठके बाद बहुत सा समय श्री स्वामी जी की बातें सुनने में ही बीतता था। बातें सभी को प्यारी लगती थी। सब इस तरह सुनते थे कि छोटे बच्चे अपने मां बाप से कहानीयां सुन रहे हो। कहानीयों में कश्मीरका काफी जिकर आता था। वहां के कई सिद्ध महा पुरुषों के जीवनकी बड़ी अच्छी अच्छी बातें सुनने को मिलीं। आप कईबार अपने बारेमें हुई घटनाओं का भी ज़िकर करते थे, पर हम एक बात नोट करते थे कि आपने कभी किसी व्यक्ति या शहर का नाम कभी नहीं लीया जिससे उनके बारेमें पता चल सके कि आप कौन हैं, कहां से आये हैं, कहां रहते हैं, इत्यादि कई बार पूछने पर उन्होंने यही उपदेश दिया कि महात्माओं को यह पूछना नहीं चाहीये, तबसे हम ने पूछना छोड़ ही दिया।

मेरा घर सत्संग के नजदीक था, और जहां मैं काम करता था, वह जगह भी दूर न थी। सवेरे उठकर नहाने इत्यादिके लीये गीता भवन ही चला जाता था, और वहां से ऐसे समय पर आता था कि कपड़े बदल, नाश्ता कर, कार रवाने के वक्त पर पहुंच जाऊं। और यह सब काम में कोई १५-२० मिनिट में ही कर लेता था। दोपहर की रसोई भी छुट्टी में भी जल्दी ही खाना खाकर श्री स्वामी जी के पास आ जाता था (~~कभी देरी भी आप इस बात को भूल ही जाते थे~~)। शाम को छुट्टी के बाद फिर उनके दर्शन होते थे और रात को खाना खाने

के बाद सतसंग में उनके पास बैठ कर बातें सुनते थे। रात १० बजे आरती पर सतसंग समाप्त होता था। इसके बाद भी प्रायः रोज ही ११—११½ और कभी कभी १२ बजे तक चर्चा होती रहती थी। इन्हीं बातों से पता नहीं किसी एक बार दो व्यक्तियों को अच्छा नहीं लगा, इन्होंने शिकायत किया कि जब सतसंग तो कुछ होता नहीं, बस बातें ही बातें होती हैं। इसका कि शेष असर हुआ नहीं, बातें वैसी ही चलती रहीं।)

श्री स्वामी जी विशेष विद्वान हैं—यह तो यथार्थ विद्वान ही जान सकते हैं, परंतु भी हमने तबतक जो कुछ सुना, देखा, उसके आधार पर कह सकते थे कि आप उच्च कोटि के विद्वान हैं। श्री सरदारी लाल जी संस्कृत पढ़ते थे, एक बार श्री स्वामी जी के कहने पर उनके लिये संस्कृत व्याकरण का अपर कोश लाया था। श्री स्वामी जी को सब कंठस्थ था। वैसे विद्वान होते हुए भी श्री स्वामी जी सरल स्वभाव के थे। आप हर बात सच्ची सच्ची कहते थे किसी तरह से बढ़ा चढ़ा कर बात करना, यह उनका स्वभाव न था—यह हमको तभी पता चल गया था। आप की बातों से पता चलता था कि आपका लालन, पालन किसी विशेष सम्पन्न और अच्छे पंडितों के घरमें हुआ है। आपने अपने जीवन की कई घटनाएँ बड़े ही सरल भाव से सुनाई थी, पर किसीसे उनका परिचय न मिलता था, हमने इस की जिज्ञासा भी छोड़ दी थी।

मैं तो हिन्दी भी अभी तक शुद्ध नहीं लिख सकता—विद्वानों की बात क्या जानूं। मुझे तो उनसे मिलने से एक विशेष ही आनन्द मिलता था, यह मैं अब जानता हूं। उस वक्त तो आनन्द आता है या नहीं आता है—यह भी सोचने की गुन्जाएश न थी, बस यही प्रयत्न होता था कि उनके पास रहें—उनकी बातें सुनें। अच्छे गुणों से सभी प्यार करते हैं, और दोष निकालने वाले तो गुणों में भी दोष निकाल सकते हैं। अपना स्वभाव भी कुछ दान लीन करने का था, पर श्री स्वामी जी के लिये दूसरी ही बात थी। मुझे तो उनके पास रहना है, बातें सुननी हैं, और उनके पास न रहने पर सुनी हुई बातें याद करनी है, बस यही मानों मेरा काम था। इससे घर वालों को कुछ चिंता भी हो जाती थी कि मैं शायद कहीं भाग न जाऊं और एक बार यही चिंता बड़ा भयानक रूप धारण कर सामने भी आई, जिससे श्री स्वामी जी पर दृष्टा ही माता जी ने रोष दिखाया था, पर इसका कोई असर न हुआ। मेरे दिलमें उनका प्यार बढ़ता ही गया। ~~मैं आज १४ वर्ष बाद जब यह लिख रहा हूं, साथ साथ सोचता हूं कि इसका कारण क्या था। कुछ समझ न आते हुए भी कुछ कुछ समझ आता है।~~ श्री स्वामी जी आत्मरूपसे सभी के अपने ही हैं, इस लिये उनसे प्रेम बढ़ता था। इस संसार के प्रेम में स्वार्थ भरा है, इसका अनुभव मुझे अपने जीवन से ही गया था। श्री स्वामी जी भी मुझे प्रेम करते थे, यह भी मैं सुनता था। मुझे ~~उन दिनों कारखाने के काम से कई बार लखनऊ जाना पड़ता था, तब श्री तिलकराज जी के साथ मेरे करीब स्वामी जी मेरे को भी याद करते थे, इससे मेरा प्यार बढ़ता था।~~ मुझे पहली बार ही निस्वार्थ प्रेम की कुछ प्राप्ति हुई। मेरा स्वभाव कुछ भावुक सा था, इसलिये भी मैं उनसे प्यार करता था। श्री स्वामी जी ऐसे ही थे कि उनसे प्यार किया जावे, तभी मैं भी करता था। वैसे मैं क्या करता था, यथार्थ तो यह कि वही करते थे। कुछ कर तो स्वतंत्र ही सकता है, परतंत्र भला क्या करेगा। इन १४ वर्षों पर फिर से

विचार करने पर पता चलता है कि स्वामी जी मेरे सभी रूपों से गुरु, सज्जन, मित्र, भाई, पिता, माँ सभी तरह का प्रेम का मैंने उनके साथ रह कर अनुभव किया। पिछले जन्म को मैं मानता हूँ और सुना भी है कि कई बार पिछले सम्बंध के कारण भी प्रेम होता है। सो ऐसा भी लगता है कि पिछले जन्म में उनके साथ सम्बंध रहा हो। इससे कोई यह न समझे कि मुझे पिछले जन्म की याद है। भगवान यह याद भुला देते हैं, यही उनकी कृपा है। इसी जन्म की बहुत घटनाएँ भूल कर जब सुबकी दुःखी होना पड़ता है, तब तो यह भगवान की सब पर कृपा ही है कि पिछले जन्मों की याद नहीं। अच्छा भी हो श्री स्वामी जी ने मुझे अपनाया, इसकी याद कर मेरा मन अब भी प्रसन्न हो जाता है।

उन दिनों श्री स्वामी जी से कई एक नये ग्रन्थों के नाम सुने। उनके कहने से एक बार "विज्ञान भैरव" लाहौर से लाया था। बड़ी अच्छी अच्छी धारणाएँ उसमें दी थी। श्री स्वामी जी से उनका विस्तार से अर्थ सुनने को मिला। श्री स्वामी जी संस्कृत के कई सुन्दर सुन्दर श्लोक सुनाते थे, फिर उनका अर्थ कर समझाते थे। आप जब श्रीमद्भागवत के

स्तां प्रसंगान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥

श्लोक सुनाते थे तो उनकी मुख मुद्रा देखने योग्य ही होती थी। महत्पादरजोभिषेकम् का सही अनुभव उन्हीं ने किया है, यह उनकी तरफ देखने से पता चल जाता था। एक और श्लोक ~~सुनाते थे कि यह~~ ~~यह पुस्तक के चौथे अध्याय का श्लोक है~~ यह श्लोक इतनी बार सुना कि याद ही होगया। वह था—

यामामनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीं विद्योतिं यां श्रुतिरहस्यविदो वदन्ति।
तामर्धचन्द्रविलसच्छिरसं सुमुखीं देवीमनन्यशरणः शरणं प्रपद्ये॥

इसी पुस्तक का एक और श्लोक जब आप सुनाते थे, तो ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे कोई अपनी देखी बात कह रहा है। इस श्लोक का विशेष भाव तो न तब समझ आया था और न अब ही, पर यह श्लोक उनको बड़ा प्यारा था, यह तब भी पता चलता था और अब भी। वह था—

कल्पद्रुमप्रसव कल्पित तल्पचित्र पूजासु हीपितप्रियतमासदृक्गीतिम्।
नित्यं भवानि! भवतीमुपवीणयन्ति विद्याधराः कनक शैलगुहागृहेषु॥

इसी तरह रोज नये नये भाव पूर्ण श्लोक, महात्माओं के जीवन चरित्र, कई पुराने इतिहास, कई नई नई हुई आध्यात्मिक घटनाएँ यह सब उनसे सुनने को मिलता था। आप स्वतंत्र विचार ही प्रगट करते थे, यह हमें जँच जाते थे, यह उनकी कृपा ही थी। अद्वैत सिद्धांत को समझाने का उनका ढंग शास्त्र सम्मत होने पर भी निराला ही होता था। जब कभी वह अपने ही जीवन की कोई घटना बताते थे, तो पता चल जाता था कि आप हर बात को बिना ही बढ़ाए, ~~ही जीवन की कोई घटना बताते थे~~, तो पता चल जाता था कि आप हर बात को बिना ही बढ़ाए, घटाए बता रहे हैं। क्योंकि उनने कई बार ऐसे भी हालात प्रसंग से बताए, जो प्रायः जिनको कोई मान आदर करे—वह नहीं बताते।

इन सब बातों से हमें विश्वास पक्का होता जाता था कि आप यथार्थ सच्ची ही बात करते हैं। आपने अपने जीवन के कई एक विशिष्ट घटनाएँ जब बताई, तो उनपर भी स्वभाविक ही सुनने वाले का विश्वास होता था। उनमें कई बातें तो ऐसी हैं कि जब कोई विद्वान उनका

~~चाहिए लिखे, तो उनको ठीक ढंगसे लिख सकता है, इसीलीये मैं उनका उल्लेख नहीं कर रहा, सिर्फ इस~~
~~लोभ संवरणके लीये ही मैं अबमें यहां कुछ लिख रहा हूं ताकि हर कोई इसे न पढ़ सके। (Note: अबतक~~
~~सब बातें उनकी अपनी लिखी पुस्तकों में आ गई है — घनश्याम)~~

जहां आप मन और आत्मा की पवित्रताका पूर्ण ध्यान रखते थे, वहां बाहरकी सफाईका भी विशेष ही ध्यान रखते थे। कपड़े, कमरा, हाथ, पाऊं इन सभी कुछ भी उनके नजदीक चीज आती थी उसकी स्वच्छताका आप ख्याल रखते थे। एक बार आप गीता भवन पर रहते ही थे, तब आपने वहां की सीढ़ियोंको स्वयं ही जलसे ऐसा साफ धो दिया कि सभी दंग रह गये। हम तो कभीकभी कैसेही झाड़से सफा कर देते थे, पर तबसे हम वहांकी हर चीजकी सफाई का ध्यान रखने लग गये

उनके आनेसे पहले हम गीता ज्ञान पर रथ निकालना, श्रीकृष्ण तथा श्रीराम जन्मोत्सव मनाना, श्री जयदयाल जी के प्रचारके लीये हिन्दी तथा गीता जी की क्लासें लेना, राम तलाई मन्दिरमें गीता जी की कथा कहना, इत्यादि कुछसे प्रोग्राम ऐसे करते थे, जिनसे लोगोंका कल्याण होगा, प्रचार होगा, इत्यादि भावनाएं थीं। इस सबके लीये अर्थ संचयमें विशेष ध्यान रखते थे कि अपने ही परिचित, तथा गीता प्रेमियोंसे ही कुछ लीया जाता था। हमारा सब कार्य बड़ी ही अच्छी तरह चल जाता था। हम दूसरी सभा सुसाईटियों की तरह चुनाव वगैरहके हकमें न थे ~~इसी कारण बन गया जिस से श्री विद्यानन्द जी (यहां के एक महात्मा) व उनकी शिष्या मंडली हमसे नाराज हो गई। वह लोग यह भी कहते थे कि कस्तूरीलाल व श्री सरदारी लाल की तो एक ही दाल होती है, वह जो चाहते हैं होता है इसलीये वह लोग तबदीली चाहते थे। इन सब बातों से~~ हमें बाहरी प्रचारसे कुछ उदासीनता सी हो गई थी। रही सही कसर श्री स्वामी जी के आनेसे पूरी होगई। अन्धा अन्धेको रास्ता दिखाए, तो दोनो ही अन्धेरे कूंएमें गिरें। इस बात की तरफ ध्यान होने लगा। श्री जी के आनेसे बाहरी दिखावेके कामसे हमें छुट्टी मिलगई।

सरदी जोर की हो गई थी। एक दिन 'श्री' जी १५-२० दिनके लीये श्री वैष्णवी देवी की यात्रा का विचार किया और चलेगये। यात्रा कर वहां देवी मंदिर से ऊपर एक महात्मा की कुटीमें चन्द दिन रह कर वापिस आ गये। फिर सत्संग उसी तरह चालू हो गया। तरह तरह की बातें होती थी, जब महापुरुषों की चर्चा चल ही रही है, तो यह बातें कैसी भी हों, उनसे लाभ ही होता था।

आप बहुत कम सोते थे। एक बार मैं ने पूछा कि मेरे लीये जो कि महनत का काम करता हूं ८ घंटे नींद की जरूरत तो है ही, तब आप ने बताया कि ठीक नींद लेने का ढंग आ जावे तो २ घंटे नींद की जरूरत होती है। उनके पास रहने से नींद में कमी का अनुभव किया। उससे कोई नुकसान नहीं आप बातों ही बातों में उपदेश देते थे। गुरु शिष्य बनाना इनको अच्छा नहीं लगता था। आप कहते थे कि दूध भी गंदे बर्तनमें नहीं डालते, तो यह ब्रह्मविद्या कथा ऐसे ही हर एक को दी जा सकती है।

एक बार जब मैं ने कुछ विशेष जानकारी की इच्छा प्रकट की तो आपने ४ महीने ब्रह्मचर्य से रहो तब बताएंगे, ऐसा कहा। मेरा वैसा करने पर आपने कुछ बताया था। थोड़े रोज उसका अनुसन्धान फिर प्रमादवश वह छूट सा गया। अब भी जब आप (श्री) मिलते है उसीको करने को कहते है-वैसे वह करना क्या है- कुछ न करना ही है-जो करनेसे भी कहीं है- मा न किञ्चिदपि चिंतयेत् - इतना ही तो लिखना है।

इसी तरह सतसंग करते, स्वामी जी के उपदेश सुनते समय बीत रहा था। एक दिन अध्यात्मिक पुस्तकोंकी बातोंमें आपने लाहौर से 'आत्मविलास' पुस्तक लाने को कहा। मैं लाहौर से वह पुस्तक जिस दुकानसे लाने को कहा था-ले आया। पुस्तक निराले ही ढंगसे लिखी थी। भाषा अनुवाद सी था, फिर भी समझनेमे कठिन सी लगी। हमारे प्रार्थना करने पर आपने हमें सतसंगमें समझाना शुरू किया। हममें से कोई पुस्तक पढ़ता था, और आप उसका अर्थ समझा देते थे। इस तरह उससे पहले तीन प्रकरण सतसंग में पढ़े। एक दिन किसी ने पूछा कि स्वामी जी आप इस पुस्तक के लेखिका को जानते हैं, तब आपने कहा था कि हां जानते हैं। इससे आगे कोई बात न हुई। एक बार एक सज्जन सं २००१ या २००२ का एक पञ्चांग ले आये, उसमें एक जगह महात्माओं की जन्म पत्रियां दी थी। उनमें एक पत्री आत्मविलास के लेखिका - 'आचार्य श्रीमद्भूतवाग्भव' जी की भी थी। इससे यह तो अनुमान हुआ कि पुस्तक किसी विख्यात महापुरुष की लिखी है। हम प्रेमसे उसका पाठ करते थे और स्वामी जी उसका अर्थ कह देते थे। उनकी कृपा से कुछ बातें अपनी बौद्धमतके अनुसार बुद्धिगत हुई। इस तरह सरदियों का मौसम खतम होने को आया। हम सुनते थे कि आप गरमीयोंमे यहां न रहेंगे। हम चाहते तो थे कि आप हमारे पास रहे, पर उनके जन्मदिन ६ महीने यहां रहनेसे हमें पता चल गया था कि उनकी इच्छा के विरुद्ध हम कुछ नहीं कर सकते - हम करना भी न चाहते थे। एक बार आपने यह भी कह दिया था कि जब मुझे जाना होता है, मैं चला जाता हूं और जाने से थोड़े समय पहले ही बताता हूं कि मैं जा रहा हूं।

उन दिनों मेरेको लाहौर कारखानेके काम से जाना होता था, वहांसे वापसी पर पहले यह पता करना होता था कि स्वामी जी यहां ही तो हैं। उनके चले जानेकी आशंका मन में खटकती रहती थी। एक बार की बात है कि मुझे २-४ दिनके लीये लाहौर जाना था - मैं बिस्तर वगैरह साथ लेकर गया। वहां लाहौर पहुंचा तो २-४ दिन का काम मानो एक ही दिनमें खत्म हो जावेगा, ऐसा प्रतीत होने लगा और शाम तक यह निश्चय हो गया कि कल कुछ सामान खरीदकर वापिस स्यालकोट चले जाना है। मैं एक होटलमें चला गया। मैं ने एक दो प्रतियां आत्मविलास दूसरे प्रेमियोंके लिये मोल ली थीं। मैं कमरे की बिजली बंदकर लेटा था, साथ के कमरे में राजस्थान से पंजाब मेट्रिक की परीक्षा देने के लीये आये कुछ विद्यार्थी बातें कर रहे थे। वहां लेटे लेटे मुझे पता चलता है कि जो आत्मविलास की पुस्तकें तुम पढ़ते हो, वह तो उन्हीं महात्मा जी की लिखी है जो हमारे गीता भवन में ठहरे हैं। इस बात का पता सुनते ही मुझे ऐसा हुआ कि उत्सुकता पूर्ण जिज्ञासा हो गया। मैं ने निश्चय किया कि मैं एकांत में यह बात श्री स्वामी जी से कहूंगा। दूसरे दिन सारा दिन वहां काम कर रात को स्यालकोट चला गया। घर से सीधा सतसंग में गया। आरती के बाद मैं ने श्री स्वामी जी को प्रणाम कर घर जाने की अनुमति मांगी किसी धक्केसे मुझको आत्मदृष्टि आ रही थी।

वैसे और दिनों आरती के बाद १-२ घंटा बात-चीत होती थी। पर स्वामी जी ने कहा कि बैठो, बैठो तन में थोड़ी देर के लीये यहां रुक गया। श्री स्वामी जी ने कुछ सिद्धांत की बातें कहीं, बात बड़ी उत्तम थी, बड़े उत्तम ढंग से समझाई भी गयी थी, पर शरीर व मन की थकावट के कारण मैं उसे ग्रहण न कर रहा था। इस बात को स्वामी जी जान गये और कहा कि अच्छा, तुम्हारा मन नहीं लग रहा, सो जाओ आराम करो। मैं प्रणाम कर पर चला गया और सो गया। अभी मेरी नींद भी न खुली थी कि श्री सरदारी लाल जी ने मेरे घर के नीचे मुझे आवाज दी। मैं घबरा कर नीचे चला गया, और वह घबराहट सच्ची निकली, क्योंकि मुझे बताया गया कि श्री स्वामी जी तो जाने को तयार खड़े हैं और वह सत्संग से नीचे सड़क पर भी आ गये हैं। उस वक्त क्या करना चाहीये यह सोचना मुशकिल होगया। पर स्वामी जी के स्वभाव की थोड़ी जानकारी के कारण, यह तो निश्चय होगया कि अब रुकने से रुकेंगे नहीं, सो उनकी राजी में ही अपनी भलाई समझ मैं उनको बसके अड्डे तक दौड़ आने को तयार होगया। सत्संग की सीढ़ियों के नीचे ही खड़े खड़े, जब सरदारी लाल जी ऊपर कमरा बन्द करने गये, मैं ने श्री स्वामी जी को बताया कि आपका ही नाम श्री भगवत्तवागभव जी है। इतने में ही श्री सरदारी लाल जी नीचे आ गये, तब श्री स्वामी जी ने श्री सरदारी लाल जी की तरफ मुंह कर कहा कि देखो यह कस्तूरी लाल क्या कहता है कि मैं ही अमृतवागभव आचार्य हूं। इसके बाद इस बारे में फिर कोई बात न हुई। एक तरह से बात उन्होंने काट दी, और एक तरह से स्वीकार कर लीया, पर इसका पता उसके बाद ही चला कि उन्होंने एक तरह से अपने आप ही कह दिया कि मैं ही अमृतवागभव आचार्य हूं। फिर उनको बस पर चढ़ा कर चले आये, जैसे कोई अपनी पूंजी ही गवां कर वापिस चला आये। श्री तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है कि

एक मीलत दारुण दुःख देहीं
बिछुड़त एक प्राण हर लेहीं ॥

वापिस आने पर कई सतसंगी वहां नित्य की तरह आ चुके थे, और जब जब जिसको पता चला कि स्वामी जी चले गये हैं, वह शीघ्र ही सतसंग में आ गया। सब हैरान थे कि रात १० बजे तक तो इस बात का ख्याल भी न था और अभी प्रातः ४ बजे सुन रहे हैं कि स्वामी जी चले गये। श्री सरदारी लाल जी ने बताया कि स्वामी जी नित्य की भांति खुद ही जल्दी उठकर पाठ पूरा कर, कपड़े लगा, हाथ में सोटा ले खड़े होकर कहने लगे कि मैं जा रहा हूं, कस्तूरी लाल को पता दे दो (चिट्ठी कह मेरे नीचे छोड़ गये थे, पर पाकिस्तान बनने पर वह भी हाथ से अपने प्रमाद की बात याद कर मैं दुःखी हो रहा था कि देखो श्री स्वामी जी किस प्रेम से रात को कुछ बताना चाहते थे, पर मेरे तमोगुण ने ऐसा न होने दिया। इस तरह हम उस दिन और उसके बाद रोज ही तरह तरह से उनको याद करते थे। मुझे लाहौर कमरे से जाना होता था, सो सभी प्रेमियों ने कहा कि मैं ही उन्हें छोड़ने गया था, इसलीये मैं ही उनको तलाश कर के लाऊं। पर तलाश कहां करूं, कोई नाम पता नहीं, किसी ठिकाने का पता नहीं, कभी किसी जगह उन्होंने पत्र लिखा नहीं, नहीं कहीं से उनका कभी कोई पत्र आया। मुझे एक ख्याल था कि आत्म विलास के लेखक आप ही हैं, पर सभी

इससे सहमत न थे, क्योंकि प्रायः लेखक अपने आपको जलाते रहते हैं, पर इस तरह अपनेको दिखाने वाला हमें कोई न मिला था। जिस बससे श्री स्वामी जी लाहौर गये थे, मैं प्रायः उसी पहली बससे लाहौर जाता था। वह बस लाहौरी गेट के बाहर रुकती थी। वहां उतरने पर मैं यहां खड़ा हो अनुमान लगाता था कि यहां उतर कर श्री स्वामी जी किधर गये, पर कुछ समझ नहीं पड़ता था। एक बार याद आया कि आपने एक श्री सीतला जी के मन्दिर की कोई बात की थी, सो मैं वहां गया, पर मेरे मनका देवता मुझे वहां न मिला।

मैं अपने घर गृहस्थी के सब काम करता था, पर उनकी याद कभी थी। यही एक सहारा था, उसकी याद कर, उनकी बातों को याद कर, उनके आँचल के सुरक्षा को याद कर, उनकी पढ़ाई पुस्तक आत्मविलास को पढ़ कर, हर वहां आने वाले को उनके बारे में बता बता कर हम उनकी याद करते रहते थे। वहां आने वाले साधु महात्माओं से पता करते, पर कुछ पता न चला। एक बार एक ब्रह्मचारी श्री दूरगामी जी जो वहां प्रायः आते थे, उनके सामने उनकी चर्चा की, उनके स्वभाव, उनकी रूप रेखा का वर्णन किया। वह चन्द दिन रह कर अपने किसी मित्र को मिलने जम्मू चले गये। वहां जा कर उन्होंने मुझे पत्र लिखा कि उनके मित्रका एक मित्र जम्मु में है, वह ऐसे ही एक महात्मा जी को जानता है, पर वह महात्मा कई बरसों से उसे मिले नहीं। पत्र मिलते ही मैं जम्मु चला गया और उस व्यक्ति को मिला जो उनको जानता था, उनका नाम 'श्री बलजिन्नाथ' था, वहां एम० ए० कर अध्यापकी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उनसे थोड़ी देर ही बातें करनेसे पता चल गया कि उन्होंने उन स्वामी जी को बचपन में देखा है, जब वह उनके घर श्रीनगर में उनके पिताजी के पास आते थे। वहां सारा दिन उन स्वामी जी के स्वभाव की चर्चा करते दिन बड़ा अच्छा गुज़रा। वह बलजिन्नाथजी स्वयं उन स्वामी जी के दर्शन करना चाहते थे, सो यह निश्चय हुआ कि हममें से जिसको वह मिलें — वह दूसरे को जरूर पता देवे। इस मिलन से यही फल निकला, बाकी उनके नाम ठिकाने का कुछ पता न चला। चलो, उनसे मिले हुए, और उनके लौटे आने प्रेम रखने वाले एक और व्यक्ति से परिचय तो हुआ। इसी तरह उनकी चर्चा करते, दिलमें उनके मिलन की चाह बढ़ाते समय बीतने लगा। १९८२ बीता, १९८३ आ गया, गरमीयां बीत गई, वर्षा बीत गई, फिर सरदियां आ गई। श्री स्वामी जी को गये तकरीबन २ वर्ष होने को आये, पर उनका कुछ पता न चला

पढ़ा और सुना भी था कि जिसके मिलने की चाह हो वह जरूर मिल जाता है, पर यहां तो दो वर्ष होने को आये (~~सिवाये उन बलजिन्नाथ के कोई भी ऐसा आदमी नहीं मिला जो उनको मिला हो, या उनका पता बता सके~~)। शक हुआ था अपने मिलने की चाह में कमी पर- क्या कोई भूल हो गई ~~क्या मौजूद खराब है~~, या क्या कारण है उनका पता नहीं चलता। पता निकालने का कोई ~~सहसा भी तो न था~~। हां दिलमें चाह थी और उसी का भरोसा था, पर अबतक तो इससे कुछ बनता नजर न आ रहा था। इसके सिवा और चारा भी क्या था कि उनके मिलने की चाह और तीव्र की जाये एक बार श्री स्वामी जी ने टेलीफून एक्सचेंज का दृष्टान्त देकर समझाया था कि उस विभु (भगवान) ईश्वरके सम्बन्धसे हम सभी जीव एक दूसरे से जुड़े हैं। जिसको उस Exchange को घुमाना आता है, और वह दूसरे का नम्बर जानता है तो इसी एक्सचेंजसे उससे मिल सकता है, चाहे

वह कितनी दूर ही क्यों न हो — चाहे किसी दूसरे लोकमें भी क्यों न हो। पर हमें तो वह युक्ति आती नहीं। जैसे कैसे बन सकता था, उनसे मिलने की चाह बढ़ाता था और उनके दर्शन न होने से अपनी ही कमी को कोसता था। इतना सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ — अपने प्रमादके कारण उसका पूरा लाभ न उठा सका। फिर भी दिलमें एक हलकी सी रोशनी कभी कभी दौड़ जाती थी, और यह विश्वास बनता था कि श्री स्वामी जी दर्शन जरूर देवेंगे — पर वह समय कब आवेगा, इसका कुछ पता न चलता था। श्री स्वामी जी से एक बार सुना था कि एक जगह वह १२ वर्ष हो गये, फिर नहीं जमे, इससे बढ़ता होसला गिरता था। फिर अपने मिलने की चाह आशा दिलाती कि आप जरूर मिलेंगे। इसी उधेड़बुन करते १९७८ की सरदियां शुरू हो गईं।

इन्हीं सरदियों में मैं एक बार लाहौर गया था, तो विचार आया कि क्यों न जिस दुकान से आत्मविलास लाता हूं, उसी से पता करूं, शायद कुछ पता चले। मैं उस दुकान पर गया। दुकानदार कुछ पुस्तकें बेचने अपने ग्राहकों से बात-चीत कर रहा था। मैं प्रतीक्षा करने लगा कि थोड़ा एकांत हो तब बात करूं। उचित समय पर मैं ने विनीत भावसे आत्मविलास के लेखिकके बारे में पूछा - उसी वक्त एक सज्जन उनके बात-चीत कर दुकानसे नीचे उतर रहे थे। उस दुकानदार ने कहा कि लेखिका एक बड़े विद्वान महात्मा हैं, उनके कई राजे भी शिष्य हैं और तभी उसने कहा कि वह जो पंडित अभी अभी दुकानसे नीचे उतरे हैं, वह उन महात्मा को विशेष रूप से जानते हैं। मैं उन पंडित जी का नाम पता पूछ जल्दी से दुकानसे उनको खोजने चल पड़ा, पर वह न हीं मिले। एक आशा लगी थी, पर काम न बना। चलो एक तो और आदमी का पता लगा जो आत्मविलास के लेखिका को जानता है। मैं चाहता था कि सब मिलकर पता करूं कि वह महात्मा वही हैं जो हमारे पास ठहरे थे। यह सब बातें पत्र से नहीं जान सकता था। उनके घर का पता मेरे पास था, पर वह तो लाहौर आये थे, पता नहीं कब वापिस जावेंगे। ऐसा विचारकर मैं वापिस स्यालकोट चला गया

कुछ दिनों बाद मेरा फिर लाहौर आना हुआ। मैं स्टेशन के सामने से जा रहा था कि अकस्मात स्यालकोट के दो सज्जन। मिले (~~एक का नाम साधु राम था, जो स्यालकोट सब जगह मंदिर में भजन कीर्तन करते थे।~~) वह दोनों कराँची से अपने गुरुदेव को मिलकर आ रहे थे (~~उनके गुरु का नाम बंगाली महात्मा था, वह स्यालकोट आए थे, तब गीता भवन भी पधारे थे।~~) मैं ने जब सुना कि वह स्यालकोट से कराँची अपने गुरु दर्शन को गये थे, तो मेरे दिलमें अपने भी स्वामी जी को मिलने की इच्छा तीव्र रूपसे जाग उठी। मैं ने वहीं निश्चय किया कि आज स्यालकोट न जाकर मैं कराची जाऊंगा (~~मेरे पास एक सौ रुपये के करीब था, मैं ने उसके हाथ घर तथा कारखाने संदेश दे दिया कि मैं चन्द रोज बाद वापिस आऊंगा कोई फिकर न करें~~) मेरे पास कोई सामान न था, वही कपड़े थे जो बदन पर थे। वह दिन २४ या २५ दिसम्बर का था, सरदी खूब थी, मैं गरम सूट पहने था और मेरे पास एक गरम ओवर कोट भी था मैं उसी रात की गाड़ी सवार हो, सरहद से गाड़ी बदल सुबह कराची पहुंच गया। पता करते करते उन पंडित जी के घर आ गया। वह समय उनके नाश्ते का था — मेरे मना करने पर भी मुझे एक कटोरी हलवा खाने को दिया। उस दिन मंगलवार था, मैं व्रत करता था, पर उनके प्रेमसे मैं ने बहाना कर लिया। बात-चीत होने पर जब उनको पता चला कि मैं उन महात्मा जी के दर्शन करना चाहता हूं, तो उनने मुझे पं० हरदेव शर्मा

सोलन वालों से मिलना चाहीये। उन्होंने यह भी कहा पहले वह महात्मा उनसे मिला करते थे, पर अब नहीं मिलते और शायद ही मिलें। उनने एक बात और भी कही कि अगर मुझे उन महात्माजी के मिलने का प्रेम है, तो मुझे (उन पंडित जी को) कभी भी न मिलना चाहीये, न ही उनके साथ किसी तरह का पत्र व्यवहार करना चाहीये। मैं ने उनकी सब बात मान ली और इसीलीये कभी किसी को यह नहीं बताया कि मैं उनको मिला हूं। तबसे मैं ने उनके साथ किसी तरह का भी सम्बंध नहीं रखा। यह आखिर वाली बात उन्होंने क्यों कही इस का कारण अब तक पता नहीं।)

मैं उसी वक्त बस से कालका के लीये रवाना हो पड़ा। यह सब स्थान मेरे पहले देखे न थे। वहां कोई परिचित भी न था। रास्ते में पता चला कि कालका पहुंचते रात पड़ जावेगी। मुझे रात कालका रह कर ही सोलन के लीये गाड़ी मिलनी थी। बस में बैठे कालका निवासीयों को शांत चीत्त से यह बताया कि मेरे पास बिस्तर वगैरह कुछ नहीं और रात कालका ठहरना है, इस बारे में उन्होंने क्या कहा। मैं ने मन में यह सब सोचा कि किसी से कुछ मांगूंगा नहीं, किसी ने कुछ राय दी नहीं सोचा, चलो जो होगा देखा जावेगा। बस कालका पहुंची लोग उतर उतर कर अपने अपने स्थान की ओर जाने लगे, मुझे कहां जाना है, यह मैं न सोच सका। स्टेशन की तरफ गया, मुसाफर खाना खचा खच भरा था, बाजार आया। सारा दिन बिना भोजन हो गया था, एक हलवाई से मिठाई और दूध लीया, एक धर्मशाला का पता कर जो थोड़े बाजार से कोई तरफ पड़ती है - वहां चला गया। रात काफी हो चली थी, धर्मशाला के पंडितजी ने ऊपर एक कमरा बता दिया। वहां एक खाट थी, उसपर लेट गया। दिसम्बर के आखरी दिन, कालका पहाड़ी स्थान, २४ घंटे से ज्यादा समय की यात्रा की थकावट और सारा दिन भोजन न मिलने से शरीर पस्त हो गया था। इसी सरदी और थकावट से मैं खाट पर लेटा, बिस्तर पास नहीं था, तकीये की जगह पगड़ी को रखा, आधा ओवर कोट नीचे बिछा, आधा ऊपर ले कर लेटा, तो टांगे कोट से बाहर और पैर सुन्न होने लगे। उठकर बैठ गया, पर थकावट से फिर लेटना पड़ा। लेटें भी तो कैसे। अभी अभी मिठाई खाकर दूध पिया था, सो अब प्यास लगी। मैं कमरे से बाहर निकल, नीचे जा उन पंडितजी से पानी मांगने के लीये सीढीयों से ज्योंही नीचे उतरने लगा, तो एक कुत्ते ने जोर जोर से भोंकना शुरु कर दिया, वहां सब अंधेरा था। मैं घबराकर वापिस अपने कमरे में आ गया, पर बिना पानी के प्यास कैसे मिटे। मैं ने फिर नीचे उतरने की कोशिश की, तो कुत्ते ने फिर चिल्लाना शुरु कर दिया। मैं ने अपने कमरे से पंडितजी, पंडितजी की बहुत आवाजें लगाई, पर किसी ने कुछ उत्तर न दिया। ऐसा लगता था कि मैं उस मकान में अकेला ही उस कुत्ते के हवाले कर दिया गया था। इसी तरह प्यास से बैचेन थकावट से चूर, सरदी से सुकड़, अन्धेरे व सुनसान पन से घबरा कर मैं खाट पर पड़ा रहा। रात आधी से ज्यादा बीत चुकी थी, अब चन्द्रमा निकल आया था। उस कमरे की खिड़कीयां बाहर गली में खुलती थी। खिड़की से बाहर देखा तो सामने एक मैदान सा था, उसमें एक नल से पानी की मोटी धार बह रही थी, पर मेरी किस्मत में प्यासों का एक चुटकला था। नीचे सुनसान था। कभी खाट पर जाता, कभी खिड़की से बाहर झांकता कि शायद कोई आदमी नजर पड़े, पर वहां प्यासे की प्यास बुझाने को पानी के नल का शोर ही था। सर्दी से बचने के लीये मैं सूर्य का ध्यान करता या भास्करी प्राणायाम का और प्यास के लीये शीतली की धारणा लेता। चान्द तो सामने अमृत किरणें बिखेर रहे थे और वरुण देवता जलकी धार बहा रहे थे, पर मेरे लीये यह सब ऐसे बन्द था। सूर्य और चन्द्र पर जीभ फेरते फेरते जीभ थक गई, गलेका रस भी सूख गया, टांगे सिकोड़ते और लम्बी करते टांगे थक गई, शरीर के कभी किसी अंग

तो कभी किसी मंजाको ओवरकोट के नीचे सस्ते सस्ते सस्ते शरीर भक्त्या, तब या तो बेहोश हो गई या नींद आ गई फिर जल्दी ही मैं क्या देखता हूं कि रात खतम हो रही है, कुछ औरतें पानी के बर्तन लेकर कहीं नल पर आई हैं, मैं खिड़की पर जाता हूं, एक औरत को पानी के लिये प्रार्थना करता हूं, तब वह मेरे को पानी कैसे दे यह सोचकर मैं ने अपनी पगड़ी नीचे लटका दी ताकि वह पगड़ी का किनारा गीला कर दे और मैं पगड़ी ऊपर खींच कर उससे पानी निचोड़, प्यास बुझा लूं - मैं घबरा कर उठा, खिड़की से बाहर देखा तो वहां कोई भी नहीं। तब पता चला कि यह स्वप्न ही था। फिर भी लेटा ही हूं कि ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी खाली बर्तन में नलके से पानी भरने का शब्द हो रहा है, ध्यान से सुना तो ठीक ऐसा ही शब्द था। अब तो जरूर कोई नल पर आया है, यह समझकर फिर खिड़की से देखा, तो कोई भी न था। पता नहीं ऐसा कितनी बार हुआ, पर रात बीत ही गई। जब जागा तब प्यास नहीं थी, धक्का कष्ट भी कुछ दूर हो गई थी, पर सरदी काफी थी। मौका मिलते धर्मशाला छोड़ मैं स्टेशन की तरफ गया। वहां शौच आदि से निवृत्त हो, जलपान कर मैं कालका से शिमला जानेवाली पहली गाड़ी से सोलन का टिकट ले सवार हो गया। आज भी मुझे जब उस सरदी की रातकी याद आती है तो ऐसा लगता है कि वह रात मेरे सामने तसवीर बनी खड़ी है, पर गुज़र गई सो गुज़रा-गया, क्या झोंपड़ी क्या वैरान। स्वामी गोविन्द नन्द जी ने लिखा है -

राह प्रेम विच मारू बदल, ज़ालिम बिजली कड़के
औहनां मनाज़िल तै कट करनी जिन्हा दा दिल धड़के ॥

कालका से सोलन की पहाड़ी यात्रा मेरी पहली ही पहाड़ी प्रदेश की गाड़ी से यात्रा थी। सोलन पहुंचकर, मैं श्री हरदेव जी के मकान पर गया। वहां से पता चला कि वह सोलन में नहीं हैं। वहां से किसी और पंडित जी का पता चला, तो मैं उनके घर जाकर उनको मिला। सारा वृत्तांत कह सुनाया। मैं ने अच्छी तरह पता कर लिया कि श्री स्वामी जी ही पुस्तकों में अपना नाम श्रीमद्भगवताचार्य लिखते हैं। उनके रूप रेखा, स्वभाव, रहन सहन, रुचि और का विस्तार से वर्णन कर, मिलान कर लिया। आप को अवधूत पसंद है और आप जो जो कीर्तन, जिस जिस स्वर में करते थे, वह स्वर जाकर अच्छी तरह मिलान कर लिया। उनके प्रिय श्लोक 'धामामनन्त मुनयः' का भी जिकर किया, तब पता चला कि वह सचमुच ही उनकी सम्पादित एक पुस्तक के चौथे अध्याय का श्लोक है। वहां से उन पंडित जी ने पं० हरदेव जी के घर के नज़दीक एक स्थान से मुझे कुछ पुस्तकें दीं जो श्री स्वामी जी की ही छपवाई हुई थीं, उनमें राष्ट्रालोक, सप्तपदी, पञ्चस्तवी और परशुराम स्तोत्र थे। मैं वह पुस्तकें ले, प्रणाम कर वापिस चल पड़ा। सोलन से कार से कालका आया और उसी दिन रात की गाड़ी से स्यालकोट चला गया। इस तरह इस यात्रा से तकरीबन दो वर्ष पहले लाहौर के एक होटल में आये विचार का पक्का समर्थन हो गया कि अपने यह 'श्री स्वामी जी' ही आत्म विलास के लेखक हैं। स्यालकोट वापिस आ गीता भवन पर सारा वृत्तांत कहा। सब प्रसन्न हुए कि कुछ तो पता चला। सोलन में यह भी सुना था कि उन लोगों को भी काफी समय से दर्शन नहीं हुए। इससे दिल घबराता था, पर फिर ख्याल आता था,

कि जब कृपा कर आपने दर्शन दिये, साथी कर परिचय की झलक भी देदी, अब इनके मिले प्रेमियों के दर्शन भी हो जायें, तब उनकी ही कृपा से दर्शन जरूर होंगे। यही भरोसा था और यह दिन प्रतिदिन बढ़ रहा था। श्री हरदेव जी से पत्र व्यवहार शुरू किया। उनको भी कई वर्षों से दर्शन न हुए थे। उनसे यह भी पता चला कि वह कई कामों से लाहौर आते हैं और वहां एक व्यक्ति सेठ सत्य नारायण के घर ठहरते हैं। सेठजी का पता भी उनने लिख दिया, वह अर्जुन नगर में जो शाहआलमी के बाहर पड़ता है, रहते थे।

अब बात आ गई Feb, मार्च, १९४० की। मैं दफ्तर से समय से लाहौर गया था। उस दिन सोमवार था और तारीख 12th Feb. 1940 थी। मुझे उसी दिन वापिस स्यालकोट चले जाना था इसलीये सामान कुछ पास न था। दोपहर के समय अवकाश मिलने पर मैं पं० हरदेव जी को मिलने सेठ सत्य नारायण के मकान पर गया। मकान तीन मंजला था, नीचे घंटी (Call Bell) लगी थी। मैं न घंटी दबाई, और इस प्रतीक्षा में था कि अभी कोई पूछेगा कि क्या काम है, तो मैं कहूंगा कि पं० हरदेव जी से मिलना है, इसी विचार से जैसे ही मैं ने ऊपर देखा, तो क्या देखता हूं कि "श्री स्वामी जी" मकान की छत से नीचे मुझे देख रहे हैं। मेरी प्रसन्नता का क्या कहना। मैं बिना जाने मकान की सीढ़ीयों पर दौड़ता दौड़ता ऊपर चला गया। वहां सीढ़ीयों में ही 'श्री जी' के दर्शन कर मैं निहाल हो गया। उनके साथ ही नीचे के कमरे में आया, तो शाम तक उनके पास बैठ बातें ही करता रहा। वहां भरतपुर के पं० गोविन्द जी मिश्र व बाल बिहारी जी के भी दर्शन हुए। शाम को घूमने के लीये श्री वैष्णवी दास जी के साथ गये थे। वहां पता चला कि स्वामी जी पहले ही उन लोगों को कह रहे थे कि आप बुधवार को स्यालकोट जावेंगे। मैं इसलीये वहां दूसरे रोज (मंगलवार) भी ठहर गया और श्री स्वामी जी के प्रोग्राम अनुसार तीसरे दिन (14.2.47) श्री स्वामी जी के साथ स्यालकोट आया। श्री स्वामी जी मेरे साथ मेरे मकान पर ही पधारे। सब सतसंगी प्रेमियों को पता चल गया तो वहां ही दर्शन को आ गये। सतसंगीयों ने जो मेरी ड्यूटी लगाई थी कि मैं ही श्री स्वामी जी को खोज कर लाऊं, उसको श्री स्वामी जी ने अपनी कृपा दृष्टि से मेरे द्वारा ही पूरा करवाया। उनकी इस कृपा को याद करते, अब भी मन प्रसन्न हो जाता है, तो उस वक्त की प्रसन्नता का वर्णन कैसे हो। इस तरह श्री स्वामी जी के दर्शन तकरीबन दो साल बाद फिर मैं कृतार्थ हो गया।

सद्गुरु जी की भावना जैसी, प्रभु मूरत तिन देखी तैसी ॥

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा - रक्षाबंधन
संवत् २०४८
कलकत्ता

X 23rd Feb. 1947. सब मिलकर जम्मू गये, वहां श्री बलजिन्दर जी को भी दर्शन करवाए

4th March 1947 – जम्मू से वापिस आकर श्री स्वामी जी कार से लाहौर गये। उसी दिन लाहौर में हिन्दू मुसलिम दंगा हो गया था।

श्री:

श्रुतवागभवानार्य जी

[जिनके सम्पर्क में रहा]

की के

कुछ संस्मरण

डॉ. श्रीनाथ तिवारी एम.एस.एस. (बी एच यू)

शास्त्री (जैन) [डी. ओ. एल.]

भू.पू. प्रिंसिपल एवं चिकित्सा अधीक्षक

आर.के.एस. तिलिया कॉलेज

दिल्ली

श्री:

वन्दना

भस्मना च्छादितो यद्वत्
स्फुलिंगो न प्रकाशते ।
स एवेक्षत-प्रमोदेन
स्पृष्टो दाहं तनोति च ॥ १ ॥

तथैवाज्ञातत्तो यस्य
सर्वज्ञम विकासिनीम् ।
शक्तिं च तेजसो गुप्ताम्
कश्चिदेवेह वेत्त्यहो ॥ २ ॥

पीयूषवर्षिणी जाणी
सरसा काव्यचातुरी ।
सनैतोभ्रपाण्डित्यम्
'प्राज्ञगुप्ति' विशेषतः ॥ ३ ॥